National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2025; 1(63): 31-34
© 2025 NJHSR
www.sanskritarticle.com

दुर्गेश कुमार टंडन
शोधार्थी (हिन्दी),
पण्डित सुन्दर लाल शर्मा (मुक्त),
विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर

डॉ.जयपाल सिंह प्रजापति
सहा. प्राध्यापक (हिंदी विभाग),
पण्डित सुन्दर लाल शर्मा (मुक्त),
विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर

Correspondence:
दुर्गेश कुमार टंडन
शोधार्थी (हिन्दी),
पण्डित सुन्दर लाल शर्मा (मुक्त),
विश्वविद्यालय छत्तीसगढ़, बिलासपुर

कबीर : अनुभव की भाषा और समाज के सत्य का दर्पण

दुर्गेश कुमार टंडन, डॉ.जयपाल सिंह प्रजापति

शोध सार -

भक्ति कालीन हिंदी साहित्य में कबीरदास एक ऐसे निर्गुण संत कवि हैं जिन्होंने अपने गहन अनुभव और जीवन की सच्चाइयों को सरल, सहज एवं जनभाषा में व्यक्त किया। उनका काव्य केवल भावनात्मक अभिव्यक्ति नहीं, बल्कि समाज के यथार्थ का दर्पण है। जब समाज में धर्म के नाम पर पाखंड, अंधविश्वास, जात-पात, छुआछूत और सांप्रदायिकता जैसी बुराइयाँ फैल रही थीं, तब कबीरदास ने अपने अनुभवजन्य सत्य के आधार पर इन सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया।

कबीरदास की भाषा अनुभव की भाषा है—वह किसी शास्त्र, पंडित या परंपरा की भाषा नहीं, बल्कि जीवन से उपजी भाषा है। उन्होंने अपने देखे और जिए हुए सत्य को लोक की बोली में व्यक्त किया, जिससे उनकी वाणी सीधे जनमानस तक पहुँची। उनकी साधुक्कड़ी भाषा में ब्रज, अवधी, खड़ी बोली, भोजपुरी, पंजाबी, राजस्थानी और फारसी तत्वों का सम्मिश्रण मिलता है, जिससे यह जनभाषा का उत्कृष्ट उदाहरण बन जाती है।

कबीर ने समाज में फैले धार्मिक पाखंड, मूर्ति पूजा, हिंसा, और बाह्याडंबर का विरोध किया तथा मानवता, प्रेम और समानता को सर्वोच्च मूल्य माना। उनके दोहों में प्रेम, करुणा और सत्य की ऐसी भावना झलकती है जो मानव समाज को एकता और सद्भाव की दिशा में अग्रसर करती है। उन्होंने कहा कि ईश्वर तक पहुँचने का मार्ग धर्म, जाति या तीर्थाटन से नहीं, बल्कि सच्चे प्रेम और आचरण से संभव है।

कबीर ने जाति-पाति और छुआछूत की अमानवीय प्रथा का तीव्र विरोध करते हुए सभी मनुष्यों की समानता का संदेश दिया। उन्होंने स्पष्ट कहा कि "जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान", जिससे समाज में समरसता और मानवीय बंधुत्व की भावना का विकास हुआ। साथ ही उन्होंने सांप्रदायिक भेदभाव को मिटाकर हिंदू-मुस्लिम एकता का आह्वान किया — "हिन्दू कहे मोहे राम पियारा, तुरक कहे रहमाना।"[1]

इस प्रकार कबीर का काव्य और दर्शन केवल धार्मिक अनुभूति तक सीमित नहीं, बल्कि सामाजिक यथार्थ का सजीव चित्रण है। उन्होंने अपने अनुभवों के आधार पर समाज को सत्य का दर्पण दिखाया। उनका साहित्य आज भी मानवता, समानता और प्रेम का अमर संदेश देता है।

बीज शब्द: जीवनानुभव, समाज का सत्य, समानता, पाखंड विरोध, मानवता, प्रेम, छुआछूत विरोध।

प्रस्तावना

जब-जब समाज में धर्म के आड़ में अत्यचार, पाखंड, बढ़ा तब-तब ऐसे युगपुरुष का जन्म हुआ, जिन्होने समाज में व्याप्त बुराईयों को दूर करने के लिए सत्य के मार्ग पर चलकर लोगों में बुराईयों के प्रति विरोध करने का साहस भरने का कार्य किया।

ऐसे ही भक्ति काल की निर्गुण धारा के ज्ञानमार्गी संत परंपरा में कबीरदास एक ऐसे कवि एवं समाज सुधारक के रूप में उभरते हैं जिन्होंने अपने जीवनानुभव आँखों देखी सच्चाई को सहज व सरल शब्दों में व्यक्त किया। सत्संग से ज्ञान प्राप्त कर जीवन, धर्म, ईश्वर और समाज से जुड़े सच्चाई को अपने अनुभूतिजन्य कसौटी पर निर्भीक होकर अभिव्यक्ति प्रदान किया। समाज में व्याप्त कुरीतियों- अंधविश्वास, पाखंड, जाति- पाति, छुआछूत आदि पर प्रहार करते हुए उसे दूर करने का प्रयास किया। अपने कार्यों में सफल भी हुए। कबीरदास किसी सुनी सुनाई बातों पर विश्वास नहीं करते थे, वे स्वयं अपने आँखों देखी बातों को कहते थे। उनके दोहों में सामाजिक व्यवस्था दर्पण की तरह स्पष्ट दिखाई देता हैं।

कबीरदास जी का परिचय

कबीरदास भक्ति काल के निर्गुण संत परंपरा के ज्ञान मार्गी शाखा के प्रमुख कवि हैं। उनका जन्म उस समय हुआ जब समाज में विभिन्न प्रकार की कुरीतियाँ- छुआछूत, जात-पात, अंधविश्वास, पाखंड आदि से समाज ग्रसित था। उनके जन्म के संबंध में लोगों में मतभेद है। कबीरपंथियों के अनुसार संवत् 1455 ज्येष्ठ शुक्ल पूर्णिमा वाराणसी (उत्तर प्रदेश) के निकट लहरताला को माना जाता है। इस संबंध में कबीरदास जी के शिष्य संत धर्मदास लिखते हैं -

"चौदह सौ पचपन साल भए, चंदवार एक ठाठ ठए।
जेठ सुदी बरसायत को पूरनमासी तिथि प्रगट भए ॥
घन गरजें दामिनि दमके बूँदे बरखें झर लाग गए।
लहर तलाब में कमल खिले तहँ कबीर भानु प्रगट भए ।"[2]

कबीरदास का पालन पोषण जुलाहा दंपति नीरू और नीमा ने किया। इनके पत्नी का नाम लोई तथा पुत्र व पुत्री का नाम कमाल व कमाली था। वह औपचारिक शिक्षा प्राप्त नहीं किया अर्थात पढ़े-लिखे नहीं थे। संतों की संगति से ज्ञान प्राप्त किया। "कबीर की रचनाएँ इस अनुश्रुति का खंडन करती हैं कि वे पढ़े-लिखे नहीं थे। 'मसि कागद छुयो नहीं कलम गही नहिं हाथ' का अभिप्राय यह है कि उन्होंने स्वयं अपने हाथ से कुछ नहीं लिखा है। वे अपनी संत मंडली में प्रवचन करते रहे होंगे और उसी जगह 'साखी', 'सबदी' भी कहते-गाते रहे होंगे।"3 इनके शिष्य धर्मदास ने कबीर के वाणी को लिपिबद्ध कर 'बीजक' के नाम से प्रकाशित कराया। इसी तरह इनके के मृत्यु के संबंध में लोगों का मनाना है कि कबीरदास जी का देहावसान संवत् 1575 माना जाता है, जिसके अनुसार इनकी आयु 120 वर्ष ठहरती है।

कबीर की भाषा अनुभव की भाषा

कबीरदास सत्संग से ज्ञान प्राप्त किया। जीवन में स्वयं की अनुभूति को लोगों को प्रमाण स्वरूप समझाने का प्रयास किया। उनकी भाषा किसी शास्त्र या परंपरा से नहीं, बल्कि प्रत्यक्ष जीवनानुभव से बनी है। उन्होंने सत्य को देखने और जीने की दृष्टि विकसित की। उनके लिए अनुभव ही ज्ञान का प्रमाण था। उन्होंने दूर-दूर तक संतों के साथ तीर्थाटन कर अनुभव प्राप्त कर सरल व सहज भाषा में अपने अनुभव को व्यक्त किया है। जहां-जहां सत्संग में गए वहां का प्रभाव उनकी भाषा में दृष्टिगोचर होता है "कबीर की भाषा मुख्य रूप से ब्रज, अवधी एवं खड़ी बोली का मिश्रण है। जिसमें कहीं-कहीं भोजपुरी, पंजाबी एवं राजस्थानी भाषा के तत्त्व भी उपलब्ध होते हैं। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने कबीर की भाषा को पंचमेल खिचड़ी या साधुक्कड़ी भाषा कहा है, जिसमें विभिन्न बोलियों के शब्द उपलब्ध होते हैं। डॉ. विन्दुमाधव मिश्र के अनुसार, "कबीर के पदों की भाषा प्रमुखतः ब्रज साखियों की राजस्थानी तथा खड़ी बोली और रमैनी की भाषा प्रधानरूप से अवधी है।" आचार्य श्यामसुन्दर दास का मत है कि, "कबीर की भाषा का निर्णय करना टेढ़ी खीर है, क्योंकि वह खिचड़ी है.... खड़ी बोली, पंजाबी, राजस्थानी, अरबी, फारसी आदि अनेक भाषाओं का पुट भी उनकी उक्तियों पर चढ़ा हुआ है। कबीर का ज्ञान विस्तृत था, उन्होंने पर्याप्त देशाटन भी किया था, अतः उनकी भाषा में अनेक बोलियों का सम्मिश्रण होना स्वाभाविक है।"[3]

समाज के सत्य का दर्पण व कुरीतियों पर प्रहार

कबीरदास के समय समाज में धर्मिक पाखंड, जातिगत भेदभाव और अंधविश्वास अपने चरम सीमा पर था। इन सामाजिक असमानता को मानवता के लिए प्रतिकूल बताया, उन्होंने अपने जीवनानुभव के आधार पर कहा कि सच्चा मनुष्य वही है जो प्रेम और सत्य को जाने, धर्म, जाति के नाम पर आपस में लड़ने की बजाय ईश्वर के सत्य को जाने कि सत्य ही ईश्वर है और वह सभी जगत में व्याप्त है। प्रत्येक मनुष्य में ईश्वर का ही वास है।

"एकै पवन एक ही पानीं एकै जोति समांना।
एक खाक गढे सब भांडै एकै कोहरा सांना।।
जैसे बाढी काष्ट ही काटै अगिनि न काटै कोई।
सब घटि अंतरि यूंही व्यापक धरै सरूपै सोई।।"[4]

Pमूर्ति पूजा का विरोध

कबीरदास समाज में व्याप्त मूर्ति पूजा का विरोध करता था। लोग मानवता के प्रति प्रेम को त्याग कर पत्थर की मूर्ति की पूजा कर आत्म कल्याण की कामना प्राप्त करना चाहते थे जबकि ऐसा संभव नहीं है। समाज की इस अंधभक्ति को देखकर कबीर जी ने मूर्ति पूजा का विरोध करते हुए कहा है-

"पाहन पूजे हरि मिलै तो मैं पूजूँ पहार।
ताते तो चाकी भली पीस खाय संसार।।"[5]

पत्थर पूजने से यदि ईश्वर की प्राप्ति होता तो लोग पहाड़ की पूजा करते हैं। घर की चक्की को नहीं पूजते जिससे परिवार का पेट चलता है। इस प्रकार मूर्ति पूजा का विरोध किया है।

प्रेम की महत्ता

प्रेम के समक्ष संसार का सारे ज्ञान को तुच्छ बताया है। लोग सांसारिक सुख सुविधा प्राप्त करने व सुखपूर्वक जीवन जीने के लिए बड़े-बड़े डिग्रियाँ प्राप्त करते हैं इसके बावजूद आपस में प्रेम पूर्वक न रहकर एक दूसरे के प्रति ईर्ष्या-द्वेष की भावना रखकर छल-कपट का भाव रखते हैं। जिससे उनके जीवन में दु:ख घर कर जाता है। इस सभी से मुक्ति के लिए कबीरदास प्रेम की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए प्रेम का पाठ पढ़ाने का संदेश दिया है।

"पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।
ढाई आखर प्रेम का, पधार सो पंडित होय।।"[6]

हिंसा का विरोध

कबीरदास समाज में हो रही हिंसा का विरोध किया। अपने स्वार्थ पूर्ति के लिए लोग मूक पशुओं का हिंसा कर अपने उदर की पूर्ति करते हैं, ऐसे लोगों के बारे में कहते हैं, वे मनुष्य नहीं पशुओं के समांन है। ऐसा करने से मानवता का किसी भी प्रकार का कल्याण नहीं हो सकता।

"बकरी पाती खाति है ताको काढ़ी खाल।
जो नर बकरी खात हैं तिनका कौन हवाल ।।"[7]

बकरी शाकाहारी जो घास, पत्ते खाती हैं। लोग उनके खाल को भी निकाल लेते हैं और जो उसे मारकर खाते हैं उनके साथ क्या व्यवहार किया जाय?

पाखंड का विरोध

कबीरदास ने समाज में व्याप्त पाखंड और उसे बढ़ावा देने वाले धर्म प्रमुख पंडितों एवं मौलवी को आड़े हाथ लिया। जो धर्म की बात कह कर स्वयं धर्म विरुद्ध अपने स्वार्थ पूर्ति में लगे हुए थे। ऐसे समाज में व्याप्त पाखंड का खुलकर विरोध किया। धर्म के नाम पर स्वार्थ पूर्ति में लगे हुए लोगों का विरोध करते हुए करते हैं-

"दिन भर रोजा रहत हैं राति हनत हैं गाय।
यह तो खून वह बंदगी, कैसे खुसी खुदाय ।।"[8]

सुबह रोजा रखते हैं और रात को गौ हत्या, ऐसा करने पर किस तरह अल्लाह खुश होगा है?

इसी तरह कबीर ने हिंदू समाज में पाखंड का विरोध किया है। वे कहते हैं माला फेरने से ईश्वर प्राप्त नहीं होता बल्कि सच्चे मन से भक्ति करने से प्राप्ति होती है, बाह्याडंबर से नहीं। हिंदू समाज में व्याप्त पाखंड पर कटाक्ष करते हुए कहते हैं -

"माला फेरत जुग गया, मिटा न मन का फेर।
करका मनका डारी के, मनका-मनका फेर।।"[9]

जाति-पाँति तथा छुआछूत का विरोध

कबीर के समय समाज में जाति-पाँति तथा छुआछूत से समाज ग्रसित था। एक वर्ग अपने को श्रेष्ठ व दूसरे को अपने से कमजोर मानते हुए लोगों से भेदभावपूर्ण व्यवहार करते थे। समाज में उच्च वर्ग के लोग निम्न वर्ग से अमानवीय व्यवहार करते थे। इस तरह समाज में सामाजिक कुरीतियाँ, भेद-भाव तथा छुआछूत बढ़ गया था। समाज के लोगों में अपने से कमजोर वर्गों से अमानवीय व्यवहार को देखते हुए कड़े स्वर में विरोध करने में "कबीर भी पीछे नहीं रहे, उन्होंने ब्राह्मण वर्ण द्वारा छुआछूत का प्रपंच खड़ा करने की भर्त्सना करते हुए कहा था-

'काहे को कीजै पांडे छोति विचार छोतहिं से अपना संसार
हमरे कैसे लोहू तुम्मरे कैसे दूध तुम कैसे वांभन पांडे हम कैसे सूद
छोति-छोति करत तुम्ह हो जाए तो गुव्वास काए को आए।'

जातिगत ऊँच-नीच का विरोध-हुआछूत का विरोध करने के साथ-साथ कबीर ने जातिगत ऊँच-नीच की भावना पर भी तीव्र प्रहार किया है। एक ओर तो उन्होंने अपनी इस प्रकार की उक्तियों से मानव मात्र की समानता का प्रचार किया कि-

'साई के सब जीव हैं, कीरी कुंजर दोय।'
'जाति-पाँति पूछै नहि कोइ, हरि को भजै सो हरि को होइ।"[10]

सांप्रदायिकता का विरोध

हिंदू-मुस्लिम अपने धर्म को श्रेष्ठ साबित करते हुए ईश्वर और अल्लाह के नाम पर आपस में लड़ रहे थे, कबीर जी समाज की स्थिति को देखते हुए राम और रहीम की एकता का समर्थन करते हुए दोनों धर्म के सांप्रदायिकता का विरोध करते हुए कहते हैं-

"हिन्दू कहे मोहे राम पियारा और तुरक रहमाना।
आपस में दोऊ लरि मुए मरम न काहू जाना।।"

इसी तरह हिंदू-मुस्लिम एकता पर बल देते हुए उन्होंने समाज के भेदभाव को दूर करते हुए कहते हैं -

"जाति-पाँति पूछै नहीं कोई।
हरि को भजै सो हरि का होई।।"[11]

निष्कर्ष

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कबीरदास के समय समाज में जाति-धर्म, पाखण्ड, छुआछूत आदि सामाजिक कुरीतियों के कारण समाज में अराजकता व्याप्त था। मनुष्य मानवता को भूलकर एक दूसरे से अमानवीय व्यवहार कर रहे थे। सामाजिक कुरीतियों को दूर करने के लिए कबीरदास जी ने पाखंड का कड़े स्वर में विरोध किया। जीवनानुभूति से प्राप्त ज्ञान से प्रत्यक्ष प्रमाण के साथ समाज की कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया, जिससे समाज में आपसी भाईचारा व समन्वय की भावना जागृत हुई। इस तरह कबीरदास एक कवि, समाज सुधारक तथा युग प्रवर्तक के रूप में प्रसिद्ध हुए।

संदर्भ सूची

1. पूनिया, डिंपल, कविता, शर्मा, संदीप. एन टी ए यूजीसी हिंदी, नई दिल्ली : अरिहंत पब्लिकेशन (इण्डिया) लिमिटेड, 2019, पृ. 99.
2. दास, श्यामसुंदर. कबीर ग्रंथावली, नई दिल्ली : सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन, 2021, पृ. 23.
3. सिंह, बच्चन. हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, दिल्ली : राधा कृष्ण प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, 2022, पृ. 86.
4. यादव, नरेश. आरोह भाग 1, नई दिल्ली : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद, 2006, पृ. 131.
5. पूनिया, डिंपल, कविता, शर्मा, संदीप. एन टी ए यूजीसी हिंदी, नई दिल्ली : अरिहंत पब्लिकेशन (इण्डिया) लिमिटेड, 2019, पृ. 97.
6. शंकर, विवेक. हिंदी साहित्य, जयपुर : राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, 2022, पृ. 132.
7. शुक्ल, आचार्य रामचंद्र. हिंदी साहित्य का इतिहास, नई दिल्ली : कमल प्रकाशन, नवीन संस्करण, पृ. 65.
8. वहीं, पृ. 65
9. पटेल, अशोक कुमार. भारतीय सनातन संस्कृति, उत्तराखंड : शब्द साहित्य प्रकाशन, 2025, पृ. 37.
10. मांगलिक, रोहित. कविता, लखनऊ: एडुगोरिल्ला प्रकाशन, 2024, पृ. 26.
11. पूनिया, डिंपल, कविता, शर्मा, संदीप. एन टी ए यूजीसी हिंदी, नई दिल्ली : अरिहंत पब्लिकेशन (इण्डिया) लिमिटेड, 2019, पृ. 98.